लोकप्रियसाहित्यमाला - 87

नमो मञ्जुश्रिये कुमारभूताय

प्रमाणवार्तिकम्

अभिप्रायप्रकाशिका-टीकया संवलितम्

प्रमाणसिद्धिः

प्रथमः परिच्छेदः

प्रधान सम्पादक
प्रो. परमेश्वर नारायण शास्त्री
कुलपति

सम्पादक
प्रो॰ रामशङ्कर त्रिपाठी
वाराणसी

राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्
मानितविश्वविद्यालयः
(भारतशासनमानवसंसाधनविकासमन्त्रालयाधीनम्)
नवदेहली

लोकप्रियसाहित्यमाला - 87

नमो मञ्जुश्रिये कुमारभूताय

प्रमाणवार्तिकम्

अभिप्रायप्रकाशिका-टीकया संवलितम्

प्रमाणसिद्धिः

प्रथमः परिच्छेदः

प्रधानसम्पादकः

प्रो. परमेश्वरनारायणशास्त्री

कुलपतिः

सम्पादकः

प्रो. रामशङ्करत्रिपाठी

वाराणसी

राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्

मानितविश्वविद्यालयः

(भारतशासनमानवसंसाधनविकासमन्त्रालयाधीनम्)

नवदेहली

भूमिका

भारतीय दर्शनों का प्रकर्ष, गाम्भीर्य एवं उनकी श्रेष्ठता विश्व में बेजोड़ है। इसका कारण वैदिक और अवैदिक दर्शनों में शताब्दियों तक प्रवृत्त कालव्यापी विचार-विमर्श, विचारों का आदान-प्रदान एवं खण्डन-मण्डन की प्रक्रिया है। इसमें बौद्धों का अपूर्व योगदान रहा है। प्रायः सभी बौद्धेतर दर्शनों में बौद्ध ही प्रमुखतः पूर्वपक्ष रहे हैं और बौद्ध दर्शनों में बौद्धेतर दर्शन। उनमें भी न्यायदर्शन के साथ उनके विचार-विमर्श का ऐतिहासिक क्रम बड़ा स्पष्ट एवं रोचक है। गौतमीय न्यायसूत्र और उसके वात्स्यायन विरचित भाष्य का खण्डन आचार्य दिङ्नाग ने अपने प्रमाणसमुच्चय ग्रन्थ में जोरदार ढंग से किया। तदनन्तर वैदिक दार्शनिक आचार्य उद्योतकर ने न्यायवार्तिक लिखकर दिङ्नाग का खण्डन किया। इसके बाद आचार्य धर्मकीर्ति ने अपने प्रमाणवार्तिक में उद्योतकर का खण्डन किया और आचार्य दिङ्नाग के विचारों को परिपुष्ट किया।

इसके बाद महापण्डित आचार्य वाचस्पति मिश्र ने तात्पर्यपरिशुद्धि में धर्मकीर्ति का खण्डन किया। इनके अतिरिक्त वैशेषिक दर्शन में व्योमशिव, मीमांसा में शालिकनाथ, जैनदर्शन में अकलङ्क आदि ने धर्मकीर्ति की स्थापनाओं का खण्डन किया। इसके बाद बौद्धपक्ष में ज्ञानश्रीमित्र, शान्तरक्षित, रत्नकीर्ति आदि ने वाचस्पति मिश्र के मतों की समालोचना की और न्यायपक्ष में आचार्य उदयन आदि ने बौद्ध मतों का खण्डन किया। इधर उदयन का खण्डन भी प्रकाशित हुआ है और इसके साथ ही बौद्ध परम्परा के साथ वादप्रक्रिया समाप्त प्रतीत होती है। सम्भवतः इसका कारण भारतवर्ष में बौद्ध धर्म का विलोप हो जाना रहा है।

यद्यपि आचार्य दिङ्नाग से पूर्व भी बौद्ध परम्परा में न्यायविद्या या प्रमाणमीमांसा से सम्बद्ध आचार्य नागार्जुन, असङ्ग, वसुबन्धु आदि के ग्रन्थ विद्यमान थे, किन्तु वे इतने शिथिलबन्ध थे कि उनसे वैदिक और अवैदिक प्रमाणशास्त्रों की सीमारेखा सुस्पष्ट नहीं होती थी। इतना ही नहीं, अपितु वे बौद्ध तत्त्वज्ञान को श्रोतृजनों की सन्तति में उत्पन्न करने में भी पूर्ण सक्षम नहीं थे। यह सब देख कर आचार्य दिङ्नाग ने अनेक प्रमाणशास्त्रों की रचना की। उनमें प्रमाणसमुच्चय प्रमुख है।

तीन धर्मचक्र-प्रवर्तन की टीका के रूप में आचार्य दिङ्नाग ने 'प्रमाणसमुच्चय' नामक ग्रन्थ की रचना की। तीन पिटकों के आधार पर प्रमाण-प्रमेय आदि का निरूपण

परार्थसम्पद् दिङ्नाग ने **'तायिने'** शब्द द्वारा कही है। तायिन् शब्द का अभिप्राय त्राणकर्ता से है। उक्त प्रकार हेतु और फल सम्पत्तियों से युक्त प्रमाणपुरुष को जिस प्रकार अभ्युदय और नि:श्रेयस का लाभ हुआ है, उस प्रकार के मार्ग को उन्होंने दूसरों को उनके हित (कल्याण) की दृष्टि बतलाकर जगत् का कल्याण किया है, न कि वरदान या ऋद्धि प्रदर्शन आदि के द्वारा किया है।

(ख) उन दो पादों की व्याख्या :

प्रमाणसमुच्चय में जो मङ्गलाचरण किया गया है, उसका अभिप्राय भी द्विविध है– (1) जिस मार्ग पर आरूढ़ होकर सम्यक्संबुद्धत्व की प्राप्ति हुई है, उस मार्ग के क्रम का निर्देश करना तथा (2) लक्ष्य- बुद्धत्व प्राप्त करने के अनन्तर उन्होंने जगत् का कल्याण (हित) करने के लिए जो उपाय (अर्थात् निराभोग कर्म) किये हैं, उन उपायों अर्थात् त्रियानों का सामान्य निर्देश करना। ये मार्ग और उपाय (त्रियान) ही समस्त मोक्षार्थी जनों के प्रधान भावनीय विषय हैं। इन विषयों के प्रति जो विपर्यास (विपरीत) ज्ञान और संशय आदि होते हैं, उनका निरास कर उनके यथार्थ स्वरूप को प्रदर्शन करने के लिए इस प्रथम परिच्छेद (प्रमाणसिद्धि) का प्रणयन किया गया है।

इन दो पादों का विस्तृत व्याख्या आचार्य धर्मकीर्ति ने **'प्रमाणमविसंवादि ज्ञानम्'** इस आदिम श्लोक से लेकर **'अनुमानाश्रयो लिङ्गम्'**[1] इस अन्तिम श्लोक अर्थात् सम्पूर्ण प्रमाणसिद्धि प्रकरण द्वारा की है।

प्रमाणपुरुष की सिद्धि के लिए सर्वप्रथम सामान्यत: प्रमाण का लक्षण बतलाना आवश्यक है, अत: यहाँ उसे प्रदर्शित किया जा रहा है। प्रमाणसामान्य की व्याख्या अब निम्नलिखित पाँच शीर्षकों में विभक्त करके की जा रही है, यथा– (क) प्रमाण का सामान्य लक्षण, (ख) फलार्थी जनों को अपने इष्ट अर्थ में प्रवृत्त करने के लिए अविसंवाद का अर्थ बतलाना, (ग) लक्षण के त्रिविध दोषों का निवारण और परपक्ष का निराकरण, (घ) लक्ष्य में लक्षण का समन्वय तथा (ङ) प्रमाण के अवच्छेदकत्त्व (अवबोद्धृत्व) का अविसंवादकत्व से अतिरिक्त प्रकार बतलाना।

(क) प्रमाण का सामान्य लक्षण– अभ्युदय और नि:श्रेयस की सिद्धि (प्राप्ति) प्रमाण अर्थात् सम्यग् ज्ञान पर निर्भर है[1]। इस विषय में प्रवृत्त होने के लिए उस (प्रमाण) का अविपरीत स्वरूप जानना आवश्यक है। उसके अविपरीत स्वरूप के ज्ञाता केवल सर्वज्ञ (भगवान् बुद्ध) ही हैं। वह सर्वज्ञ ही प्रमाणपुरुष हैं। जिन प्रमाणों से युक्त होने के कारण हम उन्हें 'प्रमाणपुरुष' कहते हैं। उन प्रमाण ज्ञानों का सामान्यलक्षण बताने के लिये आचार्य धर्मकीर्ति ने कहा–

1. द्र. – प्रमाणवार्तिक, प्रमाणसिद्धि परिच्छेद, 1.287 कारिका

राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्

मानितविश्वविद्यालयः

(भारतशासनमानवसंसाधनविकासमन्त्रालयाधीनम्)

नवदेहली